शिक्षा, राज्य और बाजार

शिक्षाविद् कृष्ण कुमार से अजय कुमार सिंह की बातचीत

● *पिछली सदी में समाज के अलग-अलग तबकों ने शिक्षा को अपने-अपने तरीके से परिभाषित करने की कोशिश की । नई सदी के आरंभिक वर्षों में शिक्षा की कौन सी परिभाषा सबसे ताकतवर होकर उभरेगी ?*

कृष्ण कुमार : नई सदी का आना ये कोई अनहोनी घटना नहीं है । 19 वीं सदी के पूर्वार्द्ध से शिक्षा में जो तारतम्य देखने को मिलता है वह तारतम्य बीसवीं सदी में लगातार बना रहा है । कोई ऐसा कारण या लक्षण नहीं है जिसको देखकर हम यह कह सकें कि यह तारतम्य आने वाले वर्षों में टूटने को है । मुझे लगता है कि यह तारतम्य आने वाले बीस पच्चीस साल तो और चलेगा ही । अगर कोई विशेष घटना है, शिक्षा जगत में, तो वह ये है कि समाज के अनेक ऐसे वर्गों के बच्चे आज पहली बार प्राथमिक शिक्षा से गुजर रहे है जो एक लम्बे समय तक शिक्षा-प्रक्रिया से बाहर रहे हैं । मुझे लगता है कि आज से दो दशक बाद, ये स्थिति बनेगी कि, माध्यमिक शिक्षा पर संख्याओं का एक जबरदस्त दबाव बनेगा और उस दबाव के चलते शिक्षा जगत में व्याप्त संस्थायी जड़ता और वैचारिक जड़ता दोनों को चरमराने के लिए एक तरह से विवश होना पड़ेगा। अब वो घटना ठीक-ठीक क्या रूप लेती है, ये तो आज की तारीख में कहना बड़ा मुश्किल है, लेकिन उसके बीज आज बनते हुए दिखाई दे रहे हैं । ये कोई अभी की नीतियों या हाल की किसी घटना से शुरू हुआ है ऐसा नहीं है । हम देख रहे हैं कि एक लम्बे समय से, खास तौर से लोकतांत्रिक चेतना और लोकतंत्र की प्रक्रियाओं के विस्तार के चलते, शिक्षा का महत्व, अपने आप एक ज्ञान के रूप में समाज में फैलता चला गया है । आज के बीस पच्चीस साल पहले जो परिस्थिति थी, जिसमें हम देखते थे कि, समाज के निम्नतम वर्गों के बारे में, आम सर्वेक्षणों में ये कहा जाता था कि उनको शिक्षा का महत्व नहीं मालूम है, वो स्थिति आज एकदम बदल चुकी है । समाज का कोई ऐसा कोना नहीं है जिसको शिक्षा का महत्व नहीं मालुम है । इस नाते शिक्षा की मांग एकाएक पूरे समाज में फैल चुकी है । उस मांग की पूर्ति करने में आज शिक्षा-व्यवस्था अपने आप को एकदम असमर्थ पा रही है और इस असमर्थता की प्रतीति ही हम इधर से कई नीतियों में देख रहे हैं । इन नीतियों के संदर्भ इधर की आर्थिक नीतियों में, राजनैतिक अस्थिरता और उथल-पुथल में पढ़े जा सकते हैं। लेकिन यह कोई ऐसा घटनाचक्र नहीं है जो नई सदी में कोई निश्चित मोड़ लेकर के आ रहा है । जो जड़ता बहुत समय से बनी हुई थी वही बनी हुई है, उस जड़ता के चरमराने की अभी तारीख एकदम पास नहीं आयी है, वो आयेगी (विश्वास पूर्वक) और उस स्थिति में, शिक्षा में एक बहुत समय से प्रतीक्षित परिवर्तन की कुछ संभावना पैदा होगी । उस समय हम किस स्थिति में होते हैं, राजनैतिक रूप से और सांस्कृतिक रूप से । क्या हम उस परिवर्तन को कर सकने की स्थिति में होंगे या नहीं ? यह कह सकना बड़ा मुश्किल है । आज उस स्थिति में हम नहीं है । आज उसकी कोई विशेष चेतना और चिन्ता भी नहीं है । किसी भी बड़ी पहल के विपरीत हम देखते हैं कि शिक्षा पर एक बहुत ही जड़ और पिछलग्गू किस्म की विचारधारा हावी है । शिक्षा तंत्र के भीतर ही शिक्षक के मनोबल को तोड़ देने का एक बहुत बड़ा अभियान तमाम प्रदेशों में चल रहा है । पाठ्यक्रम निर्माण के क्षेत्र में एक से एक अनर्गल हरकतें हो रही हैं । खास तौर से सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व के क्षेत्रों में । इतिहास के क्षेत्र में एकदम दकियानूसी और समाज में विभिन्न वर्गों के बीच असहिष्णुता और घृणा का संदेश देने वाली पाठ्य साामग्री लागू की जा रही है । इस तरह की प्रतिगामी सोच चारों तरफ व्याप्त दिखाई दे रही है । इन परिस्थितियों मे कोई रचनात्मक परिवर्तन के संकेत आज दूर-दराज तक नहीं है । शिक्षा की दृष्टि से देखें तो नयी सदी इस अर्थ में कोई नई नहीं नजर आ रही है ।

● *शिक्षा दिन-ब-दिन, संस्थायी कर्मकांडों का पर्याय बनती जा रही है । आपने अभी-अभी कहा है कि माध्यमिक शिक्षा पर जो दबाव बनेगा वो कहीं न कहीं इसके संस्थायी स्वरूप को तोड़ने की कोशिश करेगा । अगर यह संस्थायी स्वरूप टूटता है तो शिक्षा का जो नया स्वरूप होगा वह किस तरह का होगा या इस मामले में किस तरह की पहल की जानी चाहिये ?*

कृष्ण कुमार : देखिये संस्थायी स्वरूप टूटेगा नहीं बल्कि वह समाज के वृहतर वर्ग को समेटने के लिए विवश होगा । आज का जो संस्थायी ढांचा है वह समाज की बहुत छोटी इकाईयों को समेटने के लिए बना है । आज समाज का बमुश्किल से सात-आठ प्रतिशत हिस्सा ही उच्चतर शिक्षा तक पहुंच पाता है और शेष को किसी न किसी बहाने, कक्षा एक से बारहवीं तक, किसी न किसी स्तर पर, इस प्रक्रिया से बहिष्कृत कर दिया जाता है । आज की जो शिक्षा है वह तो समाज के वृहतर वर्ग को अवसरों की प्रतियोगिता से बहिष्कृत करने का एक औजार है और संस्थायी शिक्षा इस औजार को एक वैध बाना देती है । जब इस संस्थायी शिक्षा पर समाज से ज्यादा बड़े हिस्से का दबाव बनेगा तो उससे यह ढांचा चरमरायेगा और इसके भीतर, जो बहिष्करण के साधन हैं उनको यह त्यागने के लिए विवश होगा । शिक्षा बिना संस्थायी उपक्रमों के नहीं चल सकती, इसलिए संस्था से बाहर रहकर या संस्थाओं को तोड़कर, शिक्षा की बात करना, वह समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है । उस अर्थ में तो शिक्षा जीवन मात्र में व्याप्त है। अगर आप जीते चले जाते हैं तो धीरे-धीरे आपको जीवन बहुत से अनुभव देता है, बहुत-सी सीख देता है । वह एक प्रकार से शिक्षा होती है । आप प्रकृति से, समाज से, माता-पिता से हर कुछ से सीखते हैं, या समाज की संस्थाओं से सीखते हैं । लेकिन जो शिक्षा की विशेष रूप से बतायी गयी संस्था है, मैं उनकी बात कर रहा हूं । वो जो विशेष रूप से बनाया गया संस्थायी ढांचा है वह आज समाज के निम्नतनर, दरिद्रतर वर्ग को बहिष्कृत रखने का एक सुनियोजित औजार है। इस रूप में उसकी भूमिका आने वाले दशकों में एक भारी दबाव से गुजरेगी । अगर राजनैतिक रूप से और सांस्कृतिक रूप से, उस समय भारत एक दृष्टिवान समाज रहा, तो उस दबाव के चलते वह संस्थायी शिक्षा के ढांचे को रचनात्मक रूप से फैलायेगा। वैसी स्थिति में संभव है कि हम 19 वीं सदी के पूर्वार्द्ध से चली आ रही शैक्षिक जड़ता को काफी हद तक कम कर दें या उससे एक हद तक अपने समाज को मुक्त करने में कुछ कामयाबी पायें, ये एक संभावना है । लेकिन यह इस पर निर्भर है कि जिस समय यह घटना घटती है, उस समय हम सांस्कृतिक और राजनैतिक रूप से किस परिस्थिति में हैं ।

● *आज की तारीख में कौन-कौन सी ऐसी प्रक्रियायें चल रही हैं जो आने वाले दिनों में शिक्षा को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करेंगी, जिसे शिक्षा से जुड़े लोगों को ध्यान से देखने की जरुरत है ?*

कृष्ण कुमार : आर्थिक जगत् में जो अस्सी के दशक में प्रक्रियायें चल रही थीं, जो विश्व पूंजीवाद में आये हुए संकट के निवारण की कोशिशें थीं । वो हमारे देश में इस दशक में, जो खत्म होने वाला है, बहुत ज्यादा उजागर हो गयीं । जिनको हम नरसिंहाराव सरकार की नई आर्थिक नीतियों के साथ जोड़कर देखते हैं । लेकिन ये नीतियां एक विश्वव्यापी परिघटना का हमारे देश में प्रगट हुआ स्वरूप था । इसको लोग कई नामों से जानते हैं जिसमें वैश्वीकरण, निजीकरण, शिक्षा का व्यवसायिकरण, ये आदि शामिल हैं । अब इन घटनाओं के चलते ज्ञान का, शिक्षा के अधिकार का, शिक्षा की अवधारणा मात्र का, जो नया स्वरूप उभरा है, उनको शिक्षा में लगे हुए लोगों को बहुत ध्यान से देखने की जरुरत है कि आज शिक्षा किस तरह से परिभाषित हो रही है । शिक्षा शब्द से जुड़ी हुई कौन-कौन-सी मुख्य बातें हैं जो आज की इस बड़ी आर्थिक घटना की चपेट में आ रही है । जैसे दिल्ली का ही उदाहरण लें । यहां एक नया विश्वविद्यालय बना है जो शिक्षा को एक विशुद्ध तकनीकी अर्थ में लेता है और जो एक बहुत बड़े पैमाने पर शिक्षा के निजीकरण की दिशा भी खोलता है। ये दोनों ही चीजें बड़ी महत्वपूर्ण हैं । हम शिक्षा में ज्ञान के उस वृहतर रूप से काटने का प्रयास होता हुआ देख रहे हैं, जो व्यक्तित्व को प्रभावित करता है । उसके स्थान पर हम शिक्षा को एक सीमित तकनीकी ज्ञान से जोड़ने का प्रयास देख रहे हैं । दूसरी तरफ हम शिक्षा को विशुद्ध रूप से व्यवसायिक और निजी लाभ के लिए इस्तेमाल करने वाले हाथों में जाता हुआ देख रहे हैं । इन दोनों परिस्थितियों पर शिक्षा में संवेदनशीलता से जुडे हुये लोगों को विचार करना चाहिए ।

दूसरी तरफ जो धार्मिक असहिष्णुता का वातावरण विशेषकर राजनैतिक रास्ते से समाज के ऊपर छाता जा रहा है उसका शिक्षा पर पड़ता प्रभाव भी, शिक्षा के प्रति संवेदनशीलता रखने वाले लोगों को बहुत गौर से देखना चाहिए। वैसे ये कोई एकदम नयी घटना नहीं है लेकिन आज यह ज्यादा सघन दौर से गुजर रही है।

आज हम शिक्षा के ज्यादा गहरे और बड़े मानवीय मूल्यों के स्थान पर शिक्षा को केवल समाज के भीतर असहिष्णुता के विस्तार का एक औजार बनता हुआ देख रहे हैं । ऐसी कोशिशें चल रही हैं कि भारत का समाज इस तरह से परिभाषित किया जाये कि उसमें लोगों की धार्मिक आस्थायें या उपासना पद्धतियां ही भारतीय व्यक्तित्व का सबसे प्रमुख हिस्सा बनाकर दिखाई जाएं । शिक्षा को मनुष्य के व्यापकतम स्वरूप से या उसके संघर्ष के तमाम आयामों से काटकर सिर्फ मनुष्य की उपासना पद्धतियों या किसी समुदाय विशेष की पूजा पद्धतियों, उसके विश्वासों से जोड़कर, उनको फैलाने का और अन्य उपासना पद्धतियों को खण्डित करने का माध्यम बनाकर पेश किया जाय, यह एक बहुत ही दुखद घटना है । इसको शिक्षा के प्रति संवेदनशीलता से जुड़े लोगों को बारीकी से देखना, समझना और सुनना चाहिए और उसे एक बड़ी घटना बनने से रोकना चाहिए ।

- *बाजार भी मानवीय विकास के दौर में विकसित की गयी एक संस्था है । हाल फिलहाल में काफी जोर शोर से यह सुनने को मिला कि बाजार शिक्षा को अपने तरीके से नियंत्रित करने की कोशिश कर रहा है । क्या यह दो संस्थाओं की टकराहट है या कुछ और है ?*

कृष्ण कुमार : राज्य और बाजार का जो एक पूरक रिश्ता है वो हरेक पूंजीवादी समाज की बुनियाद में स्वीकार किया जाता है और हमारे देश में भी आजादी के पहले से वो रिश्ता चला आ रहा है । राज्य अपने खर्चे से शिक्षा का प्रबंध करता चला आ रहा है और उस प्रबंध की वजह से जो विभिन्न ज्ञान के, कौशल के क्षेत्रों में युवक युवतियां प्रशिक्षित होते हैं, उनका इस्तेमाल बाजार की शक्तियों को करने में मिल जाता है । बिना कोई उसमें निवेश हुये, वो उनका लाभ उठाते हैं । संविधान में राज्य की विशेष भूमिका शिक्षा के संदर्भ में परिभाषित की गई है । और ये इसलिए की गयी क्योंकि बाजार केवल लोगों के परिष्कृत श्रम को इस्तेमाल करने की दृष्टि से ही शिक्षा में रुचि रखता रहा है । सामाजिक परिवर्तन में या समाज के वंचित वर्गों को शक्ति हासिल करने के एक अस्त्र के रूप में, शिक्षा का प्रयोग करना बाजार की शक्तियों के लिए एकदम अप्रासंगिक है, और इसलिए संविधान निर्माताओं ने शिक्षा को सीधे-सीधे राज्य की जिम्मेदारियों में शामिल किया । इस दशक में हम देख रहे हैं कि राज्य और बाजार के संबंधों पर पूरे समाज में एक व्यापक पुनर्विचार होता दिख रहा है । ये पुनर्विचार दुर्भाग्यवश पूरे स्वायत्त रूप में न होकर एक विश्वव्यापी घटना के आतंक में हो रहा है । उस तरह के वाक्य अक्सर सुनने को मिलते हैं कि अगर हम आज अपने आप को नहीं बदलते, तो पीछे रह जायेंगे । परिणामत: उस बात का दबाव बनता जा रहा है कि राज्य शिक्षा के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को घटाये और शिक्षा के बहुत से क्षेत्रों को सीधे-सीधे पूँजीपतियों बल्कि, 'नव व्यवसायिकों' के हाथ में सौंप दे । कि वे शिक्षा का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए करें और शिक्षा की व्यवस्था उन तमाम उद्देश्यों के लिए करें जो इस समय बाजार में प्रतियोगिता के दृष्टिकोण से प्रासंगिक है । अब ये बात समाज के उन वर्गों के लिए अगर रखी जाय जो सीधे-सीधे, बाजार की अर्थ व्यवस्था में इस समय शामिल है, तब तो इसमें कोई विशेष सोचने लायक बात नहीं बनती । लेकिन आज हम जिस बाजार की बात कर रहें हैं, भारतीय समाज में वह बाजार अधिक से अधिक एक चौथाई जनसंख्या का बाजार है । शेष लोग उस बाजार की बाहरी परिधि पर हैं, या उससे भी बाहर है । यानी भारत का बहुसंख्यक समाज लेन-देन के उस क्रम में नहीं है, जिसको आप आधुनिक औद्योगिक कृत भारत का बाजार कह सकते हैं। अगर शिक्षा की जिम्मेदारियाँ, नव व्यावसायिकों या पूँजीपतियों के हाथ में सौंपी जाती है तो उस वृहत्तर भारत का क्या होगा जो बाजार की शक्तियों के दृष्टिपथ में ही नहीं है ? इसलिए ये बड़ा महत्वपूर्ण मुद्दा बनता है कि हम आज विश्व की पूँजीवादी शक्तियों के दबाव में आकर, क्या शिक्षा को राज्य की जिम्मेदारी मानना बंद कर दें ? मैं समझता हूं कि ये हमारे लिए राष्ट्रीय संदर्भों में एकदम आत्मघाती होगा क्योंकि बाजार किसी भी प्रकार समाज के उन अत्यन्त विस्तृत वर्गों के लिए पूंजी निवेश नहीं कर सकता है । वैसे भी शिक्षा एक बहुत लम्बा निवेश होती है । इसमें थोड़े से भी परिणाम को पाने के लिए सीधे-सीधे बीस वर्ष इंतजार करना होता है। ऐसा और कोई निवेश नहीं है जिसकी तुलना आप शिक्षा से कर सकते हैं । कोई भी व्यवसायी पांच वर्ष या अधिक से अधिक सात वर्ष बाद मुनाफा कमाना चाहता है । शिक्षा जैसे काम में कौन पूंजी लगायेगा जो बीस वर्ष बाद फल देता

हो । वो जो पूंजी इस क्षेत्र में लगाने को तैयार है दरअसल वो शिक्षा की एक बड़ी सीमित परिभाषा लेकर चल रहे हैं । उनके लिए शिक्षा का अर्थ है लाभ कमाने के लिए एक और व्यवसाय । अगर वे कोई कालेज या स्कूल खोलते हैं तो इस नजरिये से खोलते हैं कि एक साल के अन्दर इससे इतनी फीस हासिल होने लगेगी, कि हम उसमें से इतना लाभ कमा सकेंगे या हमको आयकर में बचत मिल जायेगी या किस अन्य व्यवसाय के लिए हमको यहां से परिष्कृत श्रम मिल जायेगा। वे शिक्षा को समाज के संवर्धन या देश के विकास से जुड़ने वाली किसी प्रक्रिया के रूप में नहीं देखते । वे शिक्षा को एक बहुत सीमित संदर्भ में देखते हैं । एक ऐसे समाज में जहां साक्षरता जैसी एकदम बुनियादी सीढ़ी भी आधे से ज्यादा जनसंख्या के लिए एक प्रतीक रूप में ही खुली है । ऐसे समाज में अगर शिक्षा को बाजार की शक्तियों के हाथ छोड़ दिया जाय तो यह एक सामूहिक आत्मघात से कम घटना नहीं होगी ।

- *जिस तरह बाजार बहुत थोड़े से लोगों का बाजार है उसी तरह जिसे हम सूचना क्रान्ति कह रहे हैं वह भी बहुत थोड़े से लोगों की सूचनाओं के साथ जुड़ी है । इस बाजारू हलचल का असर बहुत सारे क्षेत्रों पर हो रहा है, क्या उसका असर शिक्षा के क्षेत्र पर भी होगा ? होगा तो कैसा होगा ?*

कृष्ण कुमार : वो असर तो शुरू हो चुका है । वो असर इस नाम में ही निहित है - सूचना क्रान्ति । सूचना को ज्ञान का पर्याय बनाने का जो एक व्यापक सिलसिला देख रहे हैं । ये शिक्षा के लिए एक बहुत सतही किस्म का प्रसंग प्रस्तुत करता है । आप शिक्षा को किसी भी तरह परिभाषित करें, उसमें जानने की प्रक्रिया से उपजा हुआ जो भी तत्व है, उसको ज्ञान कहते हैं । आपको कोई चीज बता दी गई इसको ज्ञान नहीं कहा जा सकता, यह सिर्फ सूचना है । अगर आपने कोई सूचना प्राप्त कर ली और उसमें आपकी जिज्ञासा का कोई योगदान नहीं है, तो ऐसी मिली हुई कोई भी जानकारी ज्ञान नहीं बनती । सूचना क्रान्ति की शिक्षा के संदर्भ में जो एक बड़ी भारी विसंगति उभरती है, वह यही है कि हमको बहुत सी सूचनायें, बहुत सी जानकारियां बगैर किसी प्रयास, बगैर कौतुहल या जिज्ञासा के एक यांत्रिक ढंग से प्राप्त हो जाती है । किसी बात को जानने के प्रयास में मनुष्य के व्यक्तित्व का जो विकास होता है या उसकी विभिन्न इन्द्रियों का, उसकी संज्ञानात्मक क्षमताओं का जो विकास होता है, वो सूचना क्रान्ति के संदर्भ में उपजी हुई मशीनों के जरीये या सुविधाओं के जरिये मिली हुई सूचनाओं से नहीं होता है । इस कारण जब आप सूचना क्रान्ति के संदर्भ में शिक्षा की बात कर रहे होते हैं तो आप शिक्षा के एक बहुत ही छोटे या सतही पहलू की बात कर रहे होते हैं । इसलिए ये आपका जो सवाल है सीधे-सीधे इसी उत्तर की मांग करता है कि सूचना क्रान्ति की इस उथल-पुथल को हमें केवल एक पूंजीवादी बवाल के रूप में देखना चाहिए, इसका शिक्षा की अवधारणा से कोई लेना देना नहीं है, और इसको लेकर बहुत ज्यादा उछलना या उत्साहित होना, ये केवल यही प्रदर्शित कर सकता है कि हम शिक्षा की अवधारणा को कितने सतही अर्थ में समझते हैं ।

- *यद्यपि सूचना क्रान्ति को लेकर उत्साहित होने की जरूरत नहीं है तथापि सतर्क होने की जरूरत है, यह सतर्कता कैसी होनी चाहिए ?*

कृष्ण कुमार : यही होनी चाहिये कि जब ज्ञान को सूचना के रूप में बदला जा रहा है, ऐसे समय में हम शिक्षा की दार्शनिक और समाजशास्त्रीय पड़ताल के लिए अपने को तैयार रखें और जो एक नारेबाजी हो रही है सूचना क्रान्ति के नाम पर, गांव-गांव में इंटरनेट पहुंचेगा इत्यादि किस्म की घोषणायें की जा रही हैं, उसको किसी शैक्षिक गंभीरता से न लें । हम समझें कि यह नेताओं की नारेबाजी है जो कभी गरीबी हटाओ होती है तो कभी इंटरनेट पहुंचाओ होती है । ये राजनैतिक लोक लुभावन नारों के इतिहास में कोई नई घटना नहीं है । इस बात को समझ कर हम अपने को शिक्षा की अवधारणा के ज्यादा गहरे पहलुओं पर विचार करने के लिए तैयार रख सकते हैं । ◆